INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2023; 5(2): 57-59
Received: 25-06-2023
Accepted: 30-07-2023

नवीन नवनीत
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
नवीन नवनीत
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

जैन तीर्थंकर (ऋषभनाथ एवं अजितनाथ) प्रतिमा का विकास रू बिहार के परिपेक्ष्य में

नवीन नवनीत

प्रस्तावना

प्राचीन भारत प्रतीकोपासना का काल रहा है। इसका प्रभाव जैन धर्म पर भी पड़ा। जैन प्रतीक परंपरा में सर्वप्रथम आयागपद आता है। यह एक प्रकार का प्रस्तर का चक्र होता है प्रारंभिक आयागपद लांछन शून्य होते थे अतः किस जिनके लिये आयागपध है पहचान होना कठिन हो जाता है। आयागपद के दूसरे चरण में प्रतिमायें उत्कीर्ण रहती थी। आयागपद पर विशेष तीर्थंकरों के लांछन भी बने होते थे।[1]

जिन प्रतिमाओं के विकास के अंतिम चरण में जिन प्रतिमाएँ जटिल हो जाती है। प्रतिमाओं के चारों ओर अष्ट प्रतिहार बनाये जाते थे जो केवलय, वृक्ष, नन्दीवर, दुन्दभि, चामर, आसन, सुरभ आदि है। तीर्थंकर की प्रतिमा छोटी हो जाती है। उसके सहकारी उनके चारो ओर का अधिकाधिक स्थान घेर लेते हैं। मध्य में तीर्थांकर होते हैं। उकने पीछे ऊपर की ओर केवलय वृक्ष होता है। पीछे दाहिनी ओर यक्ष तथा बायीं ओर यक्षणि होती हैं। उनके सम्मुख चोरी धारण किए हुए गणधर रहते हैं।[2]

जिन प्रतिमाओं का निरंतर विकास होता रहा प्रारम्भ में जिन प्रतिमाओं का प्रदर्शन प्रतीक रूप में हुआ परन्तु काल–कालांतर में भारत के अन्य धर्मों की भाँति जैनियों नेभी प्रतिमा पूजा स्वीकार कर ली। अन्य देवी–देवताओं की ही भाँति जिन प्रतिमाओं का सृजन किया जाने लगा। जिन प्रतिमाओं का उनके बदले प्रभाव के कारण आकार छोटा होता गया और उनके आसपास उनके सहकारी तत्वों का दिन–पर–दिन विकास होता गया।[3]

1. ऋषभनाथ

जैन परंपरा में ऋषभनाथ को वर्तमान अवसर्पिणी का प्रथम जिन बताया गया है। महाराज नाभि उनके पिता और मरूदेवी उनकी माता थी। सुनन्दा और सुमगला से ऋषभ का विवाह हुआ और विवाह के पश्चात् उनका राज्याभिषेक हुआ। मूर्त्तितयों में परम्परा के अनुरूप ऋषभनाथ के कन्धों पर लटकती हुई जटाओं का नियमित अंकन हुआ है। जैन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि दीक्षा के समय ऋषभ ने इन्द्रदेव के आग्रह पर एक पुष्टि केश सिर पर ही छोड़ दिया था जबकि अन्य सभी तीर्थंकरों ने दीक्षा के पूर्व पाँच मुष्टि में सम्पूर्ण केशों का लुग्चन किया था।[4]

लांछन–ऋषभनाथ का लांछन वृषभ है और उनके यक्ष–यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा) है।

गोमुख यक्ष–गोमुख जिन ऋषभनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर एवं दिगंबर दोनों ही परम्परा के ग्रंथों में गोमुख की चतुर्भुज कहा गया है।[5]

श्वेतांबर परम्परा–निर्वाणकलिका के अनुसार गो के मुख वाले गोमुख यक्ष का वाहन गज तथा आयुध दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षमाला और बायें में मातुलिंग (फल एवं पाश) है। अन्य ग्रंथों में भी यही लक्षण प्राप्त होते हैं केवल आचार दिनकर में वाहन वृषभ है और दोनो पार्श्वों में गज एवं वृषभ के उत्कीर्णन का दृश्य है।

दिगम्बर परम्परा–दिगम्बर परम्परा में गोमुख का शीर्षभाग धर्म चक्र चिन्ह् से लांछित, वाहन ऋषभ और करो के आयुध परशु, फल, अक्षमाला एवं वरदमुद्रा है। वस्तुतः परशु के अतिरिक्त शेष आयुध श्वेताम्बर परम्परा के समान है।

इस प्रकार श्वेताम्बर एवं दिगम्बर गंथों में केवल वाहन (गज या ऋषभ) एवं आयुधों (पाश या परशु) के प्रदर्शन के सन्दर्भ में ही भिन्नता दृष्टिगत होती है।

चक्रेश्वरी यक्षी–ऋषभनाथ की यक्षी है। दोनों परम्परा के ग्रंथों में चक्रेश्वरी का वाहन गरूड़ है ओर उसकी भुजाओं में चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेताम्बर परम्परा में चक्रेश्वरी का अष्टभुज एवं द्वादशभुज और दिगम्बर परम्परा के चतुर्भुज एवं द्वादशभुज स्वरूपों में निरूपण किया गया है। द्वादशभुज स्वरूप में दोनों परम्पराओं में चक्रेश्वरी के हाथों में जिन आयुधों के प्रदर्शन के निर्देश है, वे समान है।

श्वेताम्बर परम्परा–निर्वाणकलिका के अनुसार अष्टभुज अप्रतिचका का वाहन गरूड़ है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, वाण, चक्र एवं पाश और बायें हाथों में धनुष, वज्र, चक्र एवं अंकुश होने चाहिए।[6]

दिगम्बर परम्परा–प्रतिष्ठासारंसगृह में चक्रेश्वरी का चतुर्भुज एवं द्वादशभुज स्वरूपी में ध्यान दिया गया है। इनमें चतुर्भुज यक्षी के दो करो में चक्र और शेष दो में मातुलिंग एवं वरदमुद्रा तथा द्वादशभुज यक्षी के आठ हाथों में चक्र दो में वज्र और शेष दो में मातुलिंग एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[7]

ऋषभनाथ की मूर्तियों के गुप्तकालीन उदाहरण चौसा (फलक संख्या 1) से मिले हैं। लगभग आठवीं से 13वीं शती ई० के मध्य की अनेक मूर्तियाँ बिहार के राजगीर से मिली है। बिहार की ऋषभ मूर्तियों में वृषभ लांछन एवं कन्धों पर लटकती जटाओं के साथ ऋषभ के मस्तक पर नयनाभिराम जटामुकुट भी दिखाया गया है। इन स्थलों के उदाहरणों में यक्ष–यक्षी का निरूपण नियमित नहीं था। ऋषभनाथ की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि लगभग आठवीं शती ई० में उनके साथ वृषभ लांछन और नवीं–दसवीं शती ई० में पारम्परिक यक्ष–यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी का उत्कीर्णन प्रारंभ हुआ।[8]

ऋषभनाथ की एक मूर्ति गया जिले से भी प्राप्त हुई है और अब इलाहाबाद संग्रहालय की निधि है। लगभग नौवी शती ई० की इस मूर्ति में दिगंबर ऋषभनाथ छोटे पादपीठ पर कार्यत्सर्ग मुद्रामें खड़े है। उनके पीछे अण्डाकार प्रभामण्डल है ओर सिर पर सुन्दरतापूर्वक बंधी जदर्थ स्कंधों तक लहरा रही है। पादपीठ पर वृष लांछन सिंहयुग्म तथा पूजक आकृतियां है। उभय–पार्श्वों में एक–एक चँवरधारी तथा शीर्ष्ज्ञ पर दोनों ओर एक–एक पाषाण प्रतियां के परिकर में दोनों ओर तीर्थंकरों की छोटी स्थानक आकृ तियाँ थी उत्कीर्ण की गयी है। यह प्रतिमा कला–सौष्ठव की दृ ष्टि से बिहार की मध्ययुगीन मूर्तिकला काएक उत्कृष्ट उदाहरण ज्ञात होती है।[9]

ऋषभनाथ की एक मूर्ति मानभूम से भी प्राप्त हुई हैं और अब पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। 13वीं शती ई० की यह मूर्ति भी दिगंबर है और कार्यानसर्ग मुद्रा में खड़ी है। मूर्ति के स्कन्धों पर जटाओं तथा पादपीठ पर वृष का अंकन इसे स्पष्टतया ऋषभनाथ प्रतिमा सताता है। इसके पाद पीठ के बायीं ओर एक पूजक भी उपस्थित है।[10] राजगीर की वैभारगिरि के इर्द निर्मित ध्वस्त जैन मंदिर से तीर्थंकर आदिनाथ की प्रस्तर की प्रतिमा मिली है जिसकी चरण–चौकी पर वसन्तनन्दी नामक भिक्षु का नाम आठवीं शताब्दी की लिपि में अंकित है।[11]

बिहार से प्राप्त ऋषभदेव की प्रतिमाएँ ठीक–ठीक अनुपात में बनायी गई है। उनका चेहरा पुष्ट एवं अण्डाकार है। कर्णपिण्ड लम्बे और ग्रीवा का रखन नियमित है। कर्ण से कदि तक तथा उसे नीचे के भाग की संधि कुशलतापूर्वक अंकित की गयी है। प्रत्येक भाग स्पष्ट दिखाई पड़ता है। किन्तु बड़ी कुशलतापूर्वक एक–दूसरे से मिलाया गया है। ऋषभनाथ की हथेलिया अनुपात का ध्यान न रखकर बड़ी बनायी गयी है और पैर के अंगूठे बाहर निकले हए हैं। बालों के दोनों ओर लटकते हुए दिखाया गया है तथा सिर के बीच में बालों की मांग निकाली गयी है बालों के गुच्छों को लहरों की भांति कंधों पर फैला हुआ दिखाया गया है।[12]

ऋषभ के निरूपण में हिन्दू देव शिव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। शिव का प्रभाव ऋषभ की जटाओ, वृषभ लांछन एवं गोमुख यक्ष के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। गोमुख यक्ष वृषानन है और उसका वाहन भी ऋषभ है। गोमुख यक्ष के हाथों में भी शिव से संबंधित परशु एवं पाश प्रदर्शित है। ऋषभ की चक्रेश्वरी यक्षी वाहन (गरूड़) और आयुधों (चक्र, शंख, गदा) के आधार पर हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत हाती है।[13]

2. अजितनाथ

दूसरे जिन थे। इनके पिता महाराज जितशत्रु और विजया देवी उनकी माता थी। 12 वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् अजित को अयोध्या में कैवल्य प्राप्त हुआ। अजितनाथ का लांछन गज है और यक्ष यक्षी महायक्ष एवं अजितवला है (फलक संख्या 1)। दिगंबर परम्परा में उनकी यक्षी का नाम रोहिणी है केवल दिगंबर स्थली की अजितनाथ की मूर्तियों में ही यक्ष यक्षियी का निरूपण हुआ है किन्तु उनके निरूपण में किंचित भी परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया है। मूर्तियों में लगभग छठी–सातवीं शती ई० में अजित के लांछन और आठवीं शती ई० में शासन देवताओं का निरूपण प्रारंभ हुआ। आवश्यक चूर्णि में उल्लेख है कि गर्भकाल में जितशत्रु विजया को खेल में न जीत सकें थे इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। राजपद के भोग के बाद पंचमुष्टिक केशों का लांछन कर अजित ने दीक्षा ग्रहण की। बारह वर्षों की कठिन तपस्या के बाद अजित को अयोध्या में सुप्तपर्ण (प्यगोध) वृक्ष के नीचे केवलय लान प्राप्त हुआ। अजित को सम्मेद शिखर पर ज्ञान प्राप्त हुआ।[14]

महायक्ष – महायक्ष जिन अजितनाथ का यक्ष है। दोनों परम्परा के ग्रंथों में महायक्ष को गजारूढ़ चतुर्मुख एवं अष्टभुज कहा गया है। श्वेताम्बर परम्परा–निर्वाणकलिका में गजारूढ़ महायक्ष की दाहिनी भुजाओं में वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला पाश और बायीं में मातलिंग, अभयमुद्रा, अंकुश एवं शक्ति का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा–प्रतिष्ठासागर संग्रह में गजारूढ़ महायक्ष के आयुधों का उल्लेख नहीं है। प्रतिष्ठासारोद्धार के अनुसार महायक्ष के दाहिने हाथों में खड्ग, दण्ड परशु एवं वरदमुद्रा और बायें में चक्र, त्रिशूल पध और अंकुश होने चाहिए।

अपराजित पृच्छा में गजारूढ़ महायक्ष की आठ भुजाओं में श्वेताम्बर परम्परा के अनुरूप वरदमुद्रा मुद्गर, अक्षमाला, पाश, अंकुश, शक्ति एवं मातुलिंग के प्रदर्शन का विधान है।

अजिता (या रोहिणी) यक्षी–जिन अजितनाथ की यक्षी को श्वेतांबर परम्परा में अजिता (या अजितबला या विजया) और दिगंबर परम्परा में रोहिणी नाम दिया गया है। दोनों परम्पराओं में चतुर्भुजा यक्ष्झी को लोहासन पर विराजमान बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा–निर्वाणकलिका में लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा अजिता के दाहिने हाथों में वरद मुद्रा एवं पाश और बायें हाथों में अंकुश एवं फल के प्रदर्शन का विधान है। आचार दिनकर एवं देवता मूर्ति प्रकरण में यक्षी के वाहन के रूप में लोहासन के स्थान पर क्रमशः गाय और गोधा का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा–प्रतिष्ठासारसंग्रह में लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा रोहिणी के हाथों में वरद मुद्रा, अभयमुद्रा, शंख एवं चक्र के निर्देश का उल्लेख है।

इस प्रकार दोनों परम्पराओं में केवल यक्षी के नामों एवं आयुधों के संदर्भ में ही भिन्नता प्राप्त होती है।[15]

बिहार में अजितनाथ की एक प्रतिमा मानभूम से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति भी कांस्य निर्मित है और अब पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। 13वीं शती ई० की यह मूर्ति भी दिगम्बर है और कार्यानसर्ग मुद्रा में खड़ी है। इसमें दिगंबर तीर्थंकर एक ऊँची चौकी पर कार्यात्सर्ग मुद्रामें खड़े हैं और उकने पादपीठ के नीचे गज लांछन है।

राजगीर के सोन भण्डार गुफा में लगभग दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। पीठिका पर सिंहासन के सूचक सिंहों के स्थान पर दो गज (लांछन) आकृतियां उत्कीर्ण है। पीठिका धोरी पर ध्यानस्थ जिनों की दो मूर्तियां है। मूल नायक के पार्श्वों में दो चामर घर एवं परिकर भी दो उदीयमान मालाघर आमूर्तित है। यह मूर्ति अत्यंत महत्व की है क्योंकि इसके पाद पीठ पर उत्कीर्ण एक अभिलेख की पुरालिपि से उसके निर्माणकाल के निर्धारण में सहायता मिलती है। आठवीं शती की कील–शीर्ष लिपि में उत्कीर्ण इस लिपि का पाठ इस प्रकार है– आचार्य वसन्तनन्दिर

(नौ) 'देवधर्मी (दया–धर्मी–यम) जिसका अर्थ है कि यह मूर्ति मुनि वसन्तनन्दी का पुण्य उपहार है।

फलक संख्या 1: जैन तीर्थंकर ऋषभनाथ (चौसा, बक्सर), 4थी शताब्दी ई.

फलक संख्या 2: जैन तीर्थंकर अजितनाथ (अलुआरा, बोकारो, झारखण्ड), 12वीं शताब्दी ई.

संदर्भ

1. कुमार, ध्रुव, (2013), जैन धर्म और बिहार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 127
2. वही, पृ 126
3. श्रीवास्तव, पंकजलता, (2012), हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, पंकज प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 373
4. तिवारी, मारूतिनंदन प्रसाद, (1981) जैन प्रतिमा विज्ञान, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 202, 203
5. वही, पृ. 203, 205
6. वही, पृ. 203
7. घोष, अमलानंद, (1975), जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड–2, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 264
8. तिवारी, मारूतिनंदन प्रसाद, (1981), जैन प्रतिमा विज्ञान, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 112, 207, 208
9. वही, पृ. 223, 209, 210
10. वही, पृ. 223, 224
11. वही, पृ. 211, 212
12. वही, पृ. 213, 214, 254
13. घोष, अमलानंद, (1975), जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड–1, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 172
14. वही, पृ. 173
15. वही, पृ. 216, 217, 226